आषाढ़ कृष्ण १४, रविवार, दिनांक-२२-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-२

समयसार, ३०८ से ३११ गाथा की टीका। एक पंक्ति कल चली है। फिर से **प्रथम तो जीव...** '**तावत्**' शब्द पड़ा है, संस्कृत में। संस्कृत (टीका) में '**तावत्**' शब्द पड़ा है। '**जीवो हि तावत्**' संस्कृत में है। अमृतचन्द्राचार्य। सूक्ष्म बात है। यह बात अभी कठिन पड़े लोगों को। क्या? एक तो अपनी पर्याय पर से तो होती नहीं और अपनी पर्याय आगे-पीछे होती नहीं। समझ में आया? ऐसे प्रत्येक पदार्थ में... यह तो अभी जीव पर (उतारते हैं)। जीव में जो पर्याय होती है, यह पर से तो होती नहीं, परन्तु वह पर्याय आगे-पीछे होती है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! यह क्रमसर में... '**जं गुणेहि**' 'गुण' शब्द (का अर्थ) यहाँ पर्याय है। द्रव्य जो पर्यायों से उत्पन्न होता है, वह उसका स्वकाल है। समझ में आया? क्रमबद्ध का वही अर्थ है कि जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होती है, दूसरे समय में जो पर्याय उत्पन्न होती है—यह क्रमनियमित है। अकेला क्रम नहीं, क्रम और निश्चित। क्रम से तो होती है, परन्तु निश्चित अर्थात् जो पर्याय होती है, वही होती है। आहाहा!

तो ऐसे **जीव क्रमबद्ध...** 'क्रमबद्ध' (शब्द) कैसे निकाला? कि क्रमनियमित। क्रम का अर्थ क्रम निकाला और 'नियमित' का अर्थ बद्ध निकाला। क्रमबद्ध। ये क्रमबद्ध निकाला कहाँ से? कि '**जं**' जो गुण अर्थात् जो पर्याय... होती है, वहाँ से निकाला। आहाहा! प्रत्येक द्रव्य में अपने स्वकाल में अपनी पर्याय जो उत्पन्न होनेयोग्य है, उससे उत्पन्न होती है। अभी तो रतनचन्दजी आदि कितने (पण्डित) ऐसा कहते हैं, आत्मद्रव्य में उपादान की योग्यता अनेक प्रकार की है। जैसा निमित्त आये ऐसी पर्याय हो। योग्यता अनेक प्रकार की है। यहाँ यह कहते हैं कि ऐसा है नहीं। जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, उसी प्रकार की उसकी योग्यता है। आहाहा! समझ में आया? उपादान में अनेक प्रकार की उत्पन्न होने की (योग्यता है)। जैसे जल सफेद है, (उसमें) रंग काला डालो तो काल हो जाये, नीला डालो तो नीला हो जाये। उपादान में अनेक योग्यता है, जैसा निमित्त मिले ऐसा हो, नहीं? ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह तो

मुद्दे की रकम की बात है। प्रत्येक द्रव्य... यहाँ तो अपना जीवद्रव्य लेना है। जीव है... यह जो जीवद्रव्य है... '**दवियं**'.. जो द्रव्य है, यह तो '**दवियं**' (अर्थात्) द्रव्य द्रवता है। जिस पर्याय से द्रव्य उत्पन्न होता है, उस पर्याय से ही उत्पन्न होगा और वह पर्याय उसका कार्य और द्रव्य उसका कर्ता कहने में आता है। द्रव्य को कर्ता कहने में आता है, परन्तु वास्तव में द्रव्य कर्ता नहीं है। वास्तव में तो पर्याय कर्ता और पर्याय कार्य है, परन्तु यहाँ ऐसा नहीं लेना है।

यहाँ मात्र, जिस समय में जो द्रव्य की पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह होगी। उसका तापर्त्य क्या? ऐसा कहने में और ऐसे भाव में तात्पर्य क्या है? १७२ गाथा पंचास्तिकाय में लिखा है। कार्य उसका तात्पर्य क्या? कि वीतरागता। पंचास्तिकाय की १७२ गाथा है। तो यह 'क्रमबद्ध' का तात्पर्य क्या? जो द्रव्य जिस पर्याय से उत्पन्न होता है, उसका तात्पर्य वीतरागता है। (उसका) तात्पर्य कैसे वीतरागता होती है? कि जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, उसका अगर निर्णय करता है तो राग आदि का अकर्ता हो जाता है। अकर्ता होता है... यहाँ अकर्ता(पना) सिद्ध करना है। ऊपर शब्द पड़ा है। '**आत्मनो अकर्तृत्वं द्रष्टांत पुरस्सरम् आख्याति...**' संस्कृत पाठ में यह है। अकर्तृत्व सिद्ध करना है, उसमें क्रमबद्ध आया है।

जो पर्याय जिस समय में होगी... आहाहा! उतना बहुत भाग नहीं लिया है। 'पर की सत्ता में' ऐसा लिया है। खबर है। परन्तु अन्तर में—गर्भ में इतनी बात निकाली है... जिस समय में जिस द्रव्य की जैसी पर्याय होती है, उसका तात्पर्य क्या? उसका फल क्या? यह क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करने जाता है, तो पर्याय के आश्रय से क्रमबद्ध का निर्णय नहीं होता। उसका निर्णय पर्याय में पर्याय के आश्रय से नहीं होता। उसका तात्पर्य वीतरागता है। वीतरागता पर्याय में (उत्पन्न करनी) है तो पर्याय के आश्रय से वीतरागता उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! वीतरागता तात्पर्य है, (परन्तु) वीतरागता उत्पन्न कैसे होती है? कि वीतरागस्वरूप आत्मा है... 'घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन, मत मदिरा के पानसों मतवाला समझे न। घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन।' जिन क्यों कहा, अन्तर जैन? कि बाहर में चक्रवर्ती का छह खण्ड का राज्य भी

हो, ९६ हजार स्त्रियाँ हों, करोड़ों अप्सराएँ देव को हो... जैनपना अन्तर में है। अन्तर में क्या? 'घट घट अंतर जिन बसे।' जो जिनस्वरूपी भगवान आत्मा है, उस ओर का यहाँ लक्ष्य और आश्रय करने जाते हैं तो पर्याय में वीतराग सम्यग्दर्शन होता है। यह जैनपना घट में है। इस जैनपने का कोई बाह्य त्याग में उसका प्रमाण करने जाये तो मिले नहीं। छह खण्ड का राज्य हो, ९६ हजार स्त्रियाँ हों, ९६ करोड़ सैनिक हों, तथापि सम्यग्दर्शन है। घट घट में जिन और घट घट में जैन है। आहाहा!

यह जिनपना जो वस्तु का स्वरूप है, वह वीतरागस्वभावी आत्मा है। त्रिकाल निरावरण है, अखण्ड है, एक है, शुद्ध है, परमपारिणामिकभाववाला निज द्रव्य है। आहाहा! यह निज द्रव्य पर दृष्टि करने से... निज द्रव्य वीतरागस्वरूप है, परन्तु उस पर दृष्टि करने से वीतरागीपर्याय उत्पन्न होती है। तो उसमें से बहुत निकाल दिया। निमित्त से वीतरागता हो, व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय हो—यह बात निकाल दी। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय दया, दान, पूजा, भक्ति के परिणाम उससे सम्यग्दर्शन होता है, यह बात निकाल दी। आहाहा! और करनेवाला भी आगे-पीछे कर (सकता है), यह बात निकाल दी। समझ में आया? तथापि शास्त्र में ऐसा पाठ आवे कि इस जीव को थोड़े-अचिर काल में केवलज्ञान लिया। 'अचिरम्'—विशेष नहीं, अल्प काल में लिया। परन्तु उसका अर्थ क्या? कि जिसकी दृष्टि द्रव्य ज्ञायक पर पड़ी है, जिसको जिनस्वरूप की दृष्टि का अनुभव हुआ, उसको केवलज्ञान पाने का काल ही अल्प है। क्रमसर तो आयेगा। समझ में आया? आहाहा!

षट्खण्डागम में तो ऐसा उल्लेख है कि जब मति और श्रुतज्ञान में सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु का जहाँ अनुभव हुआ और सम्यग्ज्ञान हुआ, मति-श्रुतज्ञान। आहाहा! वह मति-श्रुतज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है—ऐसा पाठ है, षट्खण्डागम में। आहाहा! क्या कहते हैं? यह मति-(श्रुत)ज्ञान, जो समय में जो पर्याय होती है, ऐसा निर्णय करने जाता है तो वीतरागीस्वरूप भगवान आत्मा पर दृष्टि जाती है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! और वीतरागभाव उत्पन्न होता है, तो कोई ऐसे कहता है कि चौथे गुणस्थान में तो समकित सराग ही होता है, वीतराग समकित नहीं होता। ऐसा कहते हैं, यह झूठ है। क्योंकि

क्रमबद्ध का तात्पर्य वीतरागता है और वीतरागता, वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा उसके आश्रय से होती है। चौथे गुणस्थान में समकित वीतरागीपर्याय है। पण्डितजी! आहाहा! समझ में आया? वह तो (साथ में रहे हुए) राग की अपेक्षा से समकित को सराग कहा है, (परन्तु) समकित सराग नहीं है। राग का (पूर्ण) अभाव नहीं किया, (पूर्ण) वीतराग नहीं हुआ, उस अपेक्षा से समकिती को सराग समकिती कहा। समझ में आया?

तत्त्वार्थसूत्र में भी (आता है कि) जब स्वर्ग का आयुष्य बँधता है तो सरागसंयम से बँधता है। ऐसा पाठ आता है तत्त्वार्थसूत्र में। सरागसंयम। और सातावेदनीय बँधता है तो सरागसंयम से बँधता है—ऐसे दो पाठ हैं। देखो! तत्त्वार्थसूत्र में है। उमास्वामी। समझ में आया? यह सरागसंयम कहने में आया, यह संयम सराग(रूप) नहीं है। संयम तो अन्तर वीतरागी पर्याय, यह ही संयम है। परन्तु साथ में आयुष्य बँधने का कारण राग था, उस राग की (अपेक्षा से) सरागसंयम कहा। आहाहा! राग वह संयम है नहीं। आहाहा! इसी प्रकार समकित में भी सराग समकित कहा है। वह तो राग के दोष को (पूर्णतया) निकाला नहीं, इस अपेक्षा से कहा है। परन्तु सम्यग्दर्शन जो है, वह वीतरागीपर्याय है। क्रमबद्ध में वह आता है। आहाहा! जिस समय में जो पर्याय (होनेवाली है, वह होगी), आगे-पीछे करना वस्तु की मर्यादा में है नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है कि आगे-पीछे पर्याय होना, यह वस्तु की स्थिति नहीं। यह आगे-पीछे नहीं होती और जब हुई है, उसका जब ज्ञान यथार्थ होना (-करना) है तो यथार्थ ज्ञान कब होगा? क्रमबद्ध में जो पर्याय आयी है, उसका यथार्थ ज्ञान कब होगा? कि जो वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है, उसका—स्व का ज्ञान होगा, तब पर्याय का ज्ञान होगा। आहाहा! समझ में आया?

हम कहते हैं न? कहा था न? कल कहा था। हमारे ७२ के वर्ष में प्रश्न उठा था। (संवत्) १९७२। ६३ वर्ष हुए। ६० और ३। बड़ा प्रश्न उठा था सम्प्रदाय में। ७० में दीक्षा और ७२ में तो... ७० से वह कहते थे। हम तो सुनते थे। नवदीक्षित थे। २३ वर्ष में दीक्षा ली थी। दो वर्ष दीक्षा के हुए बाद में बाहर प्रगट किया। वह लोग ऐसे कहते ऐसे थे कि केवलज्ञानी ने देखा ऐसा होगा। यह तो भगवतीदास भी कहते हैं कि 'जो जो

देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे।' आता है ? परन्तु उसका तात्पर्य क्या ? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने देखा, ऐसा होता है, तो वीतराग सर्वज्ञ जगत में 'हैं' ऐसी सत्ता का स्वीकार है पहले ? इस सत्ता का स्वीकार (हो), पश्चात् 'देखा, ऐसा होगा' यह बाद की बात। लालचन्दभाई! यह तो ७२ में चलती थी बात बड़ी। गुरु नरम थे, उन्होंने तो मेरी बात स्वीकार ली। परन्तु गुरुभाई थे, वे बहुत विरोध करते थे। आत्मा बिल्कुल पुरुषार्थ कर सकता नहीं। सर्वज्ञ ने देखा, तब होगा। प्रभु! वीतराग की वाणी में यह सार आया है ? वीतराग की वाणी जब सुनी, उसमें ऐसा आया कि तेरी पर्याय में जब वीतराग पर्याय होगी, वह पर्याय के काल में—स्वकाल में होगी। स्वकाल में होगी, ऐसा जब पर्याय का निर्णय करते हैं, तब त्रिकाली वीतराग का निर्णय करते हैं, तब स्वकाल में वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! शास्त्र तो गहन है, यह कोई साधारण शब्द नहीं।

कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), **दवियं जं... गुणेहिं... दवियं जं... गुणेहिं...** बस इतने में से निकाला है सार। आहाहा! भाई! **दवियं जं... गुणेहिं...** गुण अर्थात् पर्याय लेना। गुण कब उत्पन्न होता है ? पाठ तो यह है न ? कि '**दवियं जं उपज्जइ गुणेहिं**' है न ? द्रव्य में जिस प्रकार से पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह उत्पन्न होती है। उसमें से अमृतचन्द्राचार्य ने 'क्रमनियमित' (शब्द) निकाला। यहाँ परमात्मा... परमात्मा कहते हैं, वह ही सन्त कहते हैं। समझ में आया ? जो समय में जो गुण की, द्रव्य की पर्याय उत्पन्न (होनेवाली) है वह होगी, ऐसा उसमें है। तो क्रमनियमित है। क्रम में तो थी, परन्तु नियमित अर्थात् जो पर्याय वह होनेवाली है, वही होगी। बड़ी चर्चा हुई थी १३ के वर्ष में इसरी में। यह चर्चा (संवत्) १९७२ में हुई थी, सम्प्रदाय में (कि) केवलज्ञानी ने देखा, ऐसा होगा, अपने क्या पुरुषार्थ करे ?

सुन! इस जगत में केवलज्ञान एक समय की पर्याय है, वह तीन काल—तीन लोक को छुए बिना जानती है—ऐसी एक (समय) की पर्याय की सत्ता का सामर्थ्य है। ऐसी सत्ता के सामर्थ्य की प्रतीति है पहली ? उसने देखा ऐसा होगा, यह बाद की बात। एक समय की पर्याय का इतना सामर्थ्य है, ऐसा जो निर्णय करते हैं, यह पर के

(आश्रय) से, पर्याय के आश्रय से निर्णय नहीं होता। पर के आश्रय से तो नहीं होता, परन्तु पर्याय के आश्रय से यह निर्णय नहीं होता। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग। आहाहा! यह तो हम कर दे, मन्दिर बना दे, ऐसा बनाना... कौन बनावे? प्रभु! यह तो पर्याय के काल में '**दवियं जं उपज्जइ**' अपनी पर्याय के काल में उत्पन्न हुआ है, (उस) मन्दिर को कौन बनावे? प्रतिमा को कौन वहाँ स्थापे? आहाहा! समझ में आया? शुभभाव आ जाता है, तो शुभभाव में (क्रिया) निमित्त कहने में आती है (और) वह क्रिया में शुभभाव निमित्त कहने में आता है। शुभभाव से वह हुआ, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि क्रमबद्ध का जब निर्णय करते हैं (अर्थात्) केवली ने देखा (ऐसा होगा) ऐसा निर्णय करते हैं, तो उसके निर्णय में, पर्याय ज्ञानस्वरूपी प्रभु में घुस जाती है। त्रिकाली ज्ञान हूँ, सर्वज्ञ हूँ... 'सर्वज्ञ हैं' ऐसा निर्णय करने में मैं सर्वज्ञ पूर्ण हूँ... आहाहा! अल्पज्ञ के आश्रय से सर्वज्ञ का सच्चा निर्णय नहीं होता। बाहर का निर्णय होता है... (प्रवचनसार) ८० गाथा में आता है, '**जो जाणदि अरहंतं दव्वतगुणपज्जय**' यह व्यवहार है। अरिहन्त के द्रव्य, गुण, पर्याय जानना, यह तो व्यवहार है और यह पर्याय का निर्णय करना, यह भी विकल्प है—राग है। आहाहा! परन्तु अपना स्वरूप... वे सर्वज्ञ हैं, यह सर्वज्ञपना आया कहाँ से? सर्वज्ञ उनका स्वभाव है, 'है' उस प्राप्त की प्राप्ति है। है, कुँआ में है, यह अवेड़ा में... 'अवेडा' को क्या कहते हैं? हौज। पानी आता है न? कुँआ में हो, वह हौज में आता है। इसी प्रकार अन्दर में हो वह बाहर आता है। आहाहा!

भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु आत्मा त्रिकाली अनादि-अनन्त है, उसे आवरण भी नहीं, अपूर्णता भी नहीं, विरोधता नहीं, विपरीतता नहीं। आहाहा! ऐसा सर्वज्ञस्वभावी भगवान (आत्मा), उसके ऊपर जब दृष्टि जाती है तो पर्याय में—सम्यग्दर्शन और वीतरागीपर्याय में सर्वज्ञ का निर्णय हुआ, तब साथ में तीर्थंकर आदि का सर्वज्ञपना व्यवहार से निश्चय में (-निर्णय में) आया... व्यवहार से निर्णय में आया। निर्णय में यह आया? समझ में आया?

परद्रव्य का सर्वज्ञपना परद्रव्य का ही है और परद्रव्य का लक्ष्य करने से विकल्प उठता है। सर्वज्ञ हैं, ऐसा निर्णय करते ही विकल्प उठता है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, यह अन्तर्दृष्टि... जो वीतरागस्वभाव है, वह सिद्ध करना है। वीतराग प्रभु अन्दर तुम हो, तो जिस समय में तेरी (वीतरागी) पर्याय उत्पन्न होती है, उस उत्पत्ति का निर्णय तो त्रिकाली ज्ञायकभाव का निर्णय करने से होता है। आहाहा! यह गजब की बात है! बात ऐसी है। आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा का यह फरमान है, भाई! उन्होंने ऐसे कहा कि हम सर्वज्ञ हुए, वह कहाँ से हुए? पर्याय में से सर्वज्ञपर्याय आयी है? प्रवचनसार में आता है न? ज्ञान को कारणरूप से ग्रहकर... आता है। प्रवचनसार (गाथा २१) की टीका में। त्रिकाली ज्ञान को कारणरूप ग्रहकर... ऐसा पाठ है। प्रवचनसार में है। त्रिकाली ज्ञान को ज्ञायकभाव को कारणरूप ग्रहकर... आहाहा! उसको कार्य— सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता है। समझ में आया? आहाहा! यह भी यहाँ आया।

जब जीव मुख्य... प्रथम का अर्थ तावत्... तावत् का अर्थ मुख्य। मुख्य मुझे यह कहना कि और वस्तु की मर्यादा भी यह है कि तावत्... **जीव क्रमबद्ध...** क्रमसर जो परिणमन होनेवाला है, वो होगा। समझ में आया? यह चर्चा १३ के वर्ष में बहुत हुई थी वर्णीजी के साथ। वह कहते थे कि क्रमबद्ध है सही, परन्तु इसके पीछे ये ही होगी, ऐसा नहीं, गमे वह पर्याय हो। कहा, ऐसा नहीं। जो समय में जिस पर्याय के पीछे जो आनेवाली है, वही आयेगी, दूसरी नहीं (क्योंकि) आगे-पीछे (क्रम होता) नहीं। बड़ी चर्चा हुई थी इसरी में १३की साल में। सब थे—रामजीभाई थे, हिम्मतभाई थे, भाई थे इंदौरवाले बंसीधरजी। ... न बैठी इनको। और यह कहा कि आत्मा में विकार होता है, वह षट्कारक के परिणमन से अपने से होता है। कर्म के कारण से नहीं और अपने त्रिकाली द्रव्य में, गुण में तो विकार होने की योग्यता है ही नहीं। द्रव्य-गुण तो त्रिकाली शुद्ध पवित्र हैं। हैं गुण अनन्त, परन्तु सब पवित्र हैं। पवित्र गुण अपवित्रता को करे, ऐसा होता ही नहीं। समझ में आया? पर्याय में जो अपवित्रता होती है, वह गुण से नहीं। ये निमित्त के वश होता है अपने से, निमित्त से नहीं। निमित्त से नहीं, निमित्त के वश होकर पर्याय में विकार करता है, यह विकार(रूप) परिणमन पर्याय में षट्कारक से होता है। पर कारण से नहीं, द्रव्य-गुण से नहीं। आहाहा!

विकार षट्कारक से (होता है)—राग कर्ता, राग कार्य, राग साधन, राग सम्प्रदान, राग अपादान और राग आधार... जब विकार में ऐसा है तो निर्विकारी पर्याय में कहाँ (पर का अवलम्बन रहा) ? आहाहा! निर्विकारी पर्याय जो धर्मपर्याय है—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्षमार्ग, वह पर्याय भी षट्कारक से अपने से परिणमती है। आहाहा! समझ में आया ? उसको द्रव्य-गुण की अपेक्षा भी नहीं। उसको व्यवहार की अपेक्षा तो नहीं कि अच्छा व्यवहार है तो निश्चय होगा।—ऐसी बात तो है ही नहीं। आहाहा! परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न होता है, वह अपना त्रिकाल द्रव्यस्वभाव जो ज्ञायकभाव है, उसके अवलम्बन से होता है। वह भी अपेक्षित बात है। बाकी तो पर्याय कर्ता, पर्याय करण आदि पर्याय के षट्कारक पर्याय से है। समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई! इस एक लाइन में बहुत भरा है। यह तो सिद्धान्त हैं, यह कोई वार्ता नहीं है, कथा नहीं है। आहाहा!

केवली ने देखा, ऐसा (होगा)—ऐसा निर्णय होने में केवलज्ञान का निर्णय करना पड़ेगा। केवलज्ञान की जगत में सत्ता है, (ऐसा) स्वीकार करे, तब उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। आहाहा! ये क्रमबद्ध का निर्णय करने जाते हैं, आहाहा! तब उसका तात्पर्य द्रव्यस्वभाव पर जाता है। समझ में आया ? आहाहा! और प्रवचनसार में ४७ नय लिये हैं। काल में भी मोक्ष और अकाल में भी मोक्ष—ऐसा पाठ आता है। समझ में आया ? ४७ नय हैं। काल मोक्ष और अकाल मोक्ष—दोनों ही बात हैं। जो क्रमबद्ध है (तो) अकाल में मोक्ष कहाँ से आया ? उसका अर्थ दूसरा है। 'अकाल में मोक्ष' का अर्थ यह ही काल—समय में मोक्ष होता है, यह उसकी पर्याय आनेवाली है, उस समय होती है। परन्तु अकाल (शब्द) क्यों लिया ? कि स्वभाव और पुरुषार्थ को साथ में लेना है। अकेला क्रमबद्ध (न लेकर) साथ में पुरुषार्थ और स्वभाव लेना है। समझ में आया ? पाँच समवाय साथ में लेना है, तो काल के अतिरिक्त दूसरे चार समवाय जोड़कर अकाल कहने में आया है। आहाहा! परन्तु अकाल का अर्थ ऐसा नहीं कि... आहाहा! डाह्याभाई! ऐसी बात है।

आहाहा! अरे रे! ऐसा मनुष्यपना मिला, अरे! मुश्किल (धर्म) करने का अवसर

आया। अवसर अब आ गया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने लिखा है, 'सब अवसर गया है।' ऐसा पाठ है। आहाहा! तेरी नींद खोल दे। जागृत हो जा नाथ! प्रभु! तेरी शक्ति तो अनन्त... अनन्त गुण से भरी पड़ी है। आहाहा! उसको जगा दे। तू नींद में सोता है। आहाहा! अपने स्वरूप की खबर नहीं और राग आदि को अपना मानते हैं, यह सब प्राणी असाध्य में हैं। असाध्य में हैं। मरते असाध्य हो जाते हैं न? यह तो जीते जीअसाध्य है। साध्य जो त्रिकाली ज्ञायकमूर्ति प्रभु है, आहाहा! उसकी दृष्टि नहीं, उसका अनुभव नहीं, उस ओर का आश्रय नहीं और राग का आश्रय है, व्यवहार का आश्रय है, वे सब अन्धे हैं।

ये पाठ है। '**आसंसारात्' हे अन्धा...** समयसार में निर्जरा अधिकार है न? '**आसंसारात्' हे अन्धा...**' भो अन्धा'ऐसा लिया है। है? (निर्जरा अधिकार की) अन्तिम गाथा। निर्जरा अधिकार है न? '**आसंसारात्**' नहीं है? कलश १३८। '**आसंसारात्प्रति-पदमीतद्विबुध्यध्वम् रागिणी नित्यमत्ता' अन्धा... सुप्ता...** है न? ओहोहो! सम्बोधन करते हैं कि हे अन्ध! अन्धा है न? आहाहा! '**तद्विबुध्यध्वम् अंधा**' दूसरी लाईन। 'अन्धा' शब्द है। हे अंधे! आहाहा! तूने सब देखा, परन्तु तेरी चीज़ नहीं देखी तो तू बन्धा है। आहाहा! है? 'अन्धा' सम्बोधन है। हे अन्ध प्राणियों! आहाहा! अरे! जो देखने की चीज़ थी, उसे तो देखी नहीं, जाननेवाले को जाना नहीं, देखनेवाले को देखा नहीं, आहाहा! और जानने में जो चीज़ आती है, उसको जानकर भटका। वास्तव में ये चीज़ को जानता नहीं, वास्तव में तो अपनी पर्याय को जानता है। पर को जानता नहीं, पर (को जानना), यह तो असद्भूत व्यवहारनय से कहने में आता है। आहाहा! पर को जाननेवाली पर्याय अपने में अपने से अपने को जानती है, परन्तु वो पर्याय को जानता है। आहाहा! समझ में आया?

वह पर्याय तो अंश है (और) भगवान अंशी त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! शुद्धस्वभाव से पूर्ण भरा पड़ा भगवान है। आहाहा! हे अन्ध! वहाँ नजर कर। आहाहा! पर्याय में राग, दया, दान, व्रत में रुका तो भी यहाँ तो अन्धा कहते हैं। अन्धे है, तुम अन्धे हो। तेरी चीज़ राग से भिन्न अन्दर पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु है,

सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द के जल से भरा सागर है, ज्ञान और आनन्दरूपी जल से भरा सागर है, आहाहा! प्रभु! वहाँ तेरी नजर (कर)। क्रमबद्ध में यह है। समझ में आया? क्रमबद्ध में जिस समय में जो (पर्याय) होगी, जिस समय में जो होगी, तो (क्या) उसके (-पर्याय के) सामने देखना है? समझ में आया? यहाँ तो अकर्तापना, ज्ञातापना सिद्ध करना है। पाठ तो यह आया कि अकर्तापना सिद्ध (करना है)। अकर्ता कहो या ज्ञाता कहो। ज्ञाता भगवान सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु, सर्वदर्शी अतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण नाथ है—ऐसा निर्णय करता है तो उसको सम्यग्दर्शन होता है। यह बात है भाई! इसके बिना सब शून्य है, एक बिना के शून्य। क्या कहते हैं? एक बिना के शून्य। आहाहा! यहाँ कहते हैं... यहाँ अन्धा शब्द... की बड़ी बात चलती है। अब जो यहाँ अपना (अधिकार) चलता है।

'क्रमबद्ध' आया न? **जीव क्रमबद्ध...** आहाहा! इसमें पुरुषार्थ उड़ जाता है, पुरुषार्थ करने का रहता नहीं—ऐसे मानते हैं। भविष्य में जो समय में जो पर्याय होगी, वो होगी, इसमें हम क्या कर सके? परन्तु उसका निर्णय करने में तेरा पुरुषार्थ स्वभावसन्मुख जाता है, तब क्रमबद्ध का निर्णय होता है। आहाहा! समझ में आया? हमारे ७२ से यही चर्चा निकाली थी पहली। ६४ वर्ष हुए। बाहर में गुरु बैठे थे। गुरु भी सुनते थे। कर्म से विकार कभी तीन काल में होता नहीं। ७१ के वर्ष। तुम्हारे जन्म से पहले। (व्याख्यान) करने की शुरुआत की दोपहर को। सुबह में तो मेरे गुरु वाँचते थे। प्रोषध आदि करे और प्रोषध? प्रोषध आदि करे तो दोपहर बैठे हो। तो कहे, कानजीस्वामी वांचे... वांचते थे तो ये कहा कि कर्म से आत्मा... क्योंकि कर्म परद्रव्य है। परद्रव्य से अपने में विकार होता है... परद्रव्य से विकार होता है, यह तो तीन काल में होता नहीं। परद्रव्य अपने को कभी छूता ही नहीं। समझ में आया?

परद्रव्य कभी अपने को छूता नहीं। यह तीसरी गाथा में है समयसार। समयसार तीसरी गाथा। प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्यायरूपी धर्म को चूमता है, परन्तु परद्रव्य की पर्याय को कभी छुआ ही नहीं, चूमा नहीं, स्पर्शा नहीं। 'अडया नहीं' को क्या कहते हैं? छुआ नहीं। कर्म को आत्मा छुआ ही नहीं और कर्म आत्मा को छुआ नहीं। आहाहा!

तेरे अपराध से तेरे में मिथ्या-भ्रान्ति और राग-द्वेष तेरे से उत्पन्न होता है, कर्म से नहीं। वह मिथ्या-भ्रान्ति और विकार का नाश करना हो, मेरे में है नहीं—ऐसा निर्णय करना हो, तो उसको ज्ञायक की ओर जाना पड़ेगा। आहाहा! प्रियंकरजी! यह शास्त्र... पण्डितपना यह है। पण्डिताई की बातें सब करे, परन्तु मूल चीज़ तो... आहाहा! ११ अंग भी पढ़ डाले अनन्त बार। एक अंग में अठारह हजार पद और एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक। ऐसा ११ अंग कण्ठस्थ किया, उसमें क्या आया? वह (ज्ञान) तो परज्ञेयनिष्ठ है। यह शास्त्र का ज्ञान परज्ञेय है। ज्ञेय पर है, उसके ज्ञान में निष्ठ है। वह स्वज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वचनामृत में आता है, बहिन के वचनामृत में। शास्त्र का ज्ञान परज्ञेयनिष्ठ है। अन्दर आता है। अपना ज्ञेय ये नहीं। आहाहा! जब निर्णय क्रमबद्ध का करते हैं—जो समय में जो पर्याय होगी, वह होगी उसका निर्णय करते हैं, तो अपने अन्तर में झुकता जाता है, दृष्टि का विषय आत्मा हो जाता है। दृष्टि का विषय क्रमबद्धपर्याय नहीं रहती। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! जरा समझना कठिन पड़े। हमारे पण्डितजी कहते हैं न कि मुद्दे की रकम है। मूल बात है, यह। आहाहा! यह तो प्रतिमा ले लो, यह ले लो। धूल में है नहीं तेरी प्रतिमा। प्रतिमा कहाँ से आयी? सम्यग्दर्शन की तो खबर नहीं और सम्यग्दर्शन कैसे होता है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! क्रमबद्धपर्याय होती है, उसमें आगे-पीछे करने की इन्द्र, नरेन्द्र और जिनेन्द्र की ताकत है नहीं। तू आगे-पीछे कर दे पर्याय को और धर्म हो जाता है? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! भाषा तो सादी है न, प्रभु! भाषा कोई ऐसी बहुत कठिन नहीं संस्कृत, व्याकरण... भाषा तो सादी है। प्रभु सादा है अन्दर। निरावरणस्वरूप परमात्मस्वरूप पूर्ण पड़ा है, उसका आश्रय लेने से क्रमबद्ध का सच्चा निर्णय होता है। क्रमबद्ध का निर्णय करने में स्व का आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन की पर्याय—भव के अन्त की पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया?

यह कहा, **जीव क्रमबद्ध... 'जं गुणेहिं'** उसका अर्थ निकाला। जो पर्याय से उत्पन्न होता है... यह अपने परिणामों से... यहाँ वापस, ये परिणाम अपने द्रव्य का है, ऐसा कहना है। दूसरी जगह कहे कि परिणाम जो है, वह आत्मद्रव्य का है ही नहीं।

पर्याय, पर्याय की है, द्रव्य द्रव्य का है। क्योंकि दो वाच्य है... दो वाचक है तो अन्दर दो वाच्य है। तो वाच्य दोनों ही स्वतन्त्र हैं। पर्याय भी स्वतन्त्र है और द्रव्य भी स्वतन्त्र है। आहाहा! यहाँ तो पर से भिन्न करने की अपेक्षा से, अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ, (ऐसे कहा)। अपने परिणामों से... द्रव्य अपने परिणामों से... तो परिणाम द्रव्य का अपना हुआ। समझ में आया? प्रभु की वाणी, कुन्दकुन्दाचार्यदेव दिगम्बर सन्त की वाणी, आहाहा! कहीं है नहीं। उसको समझना... आहाहा! अपना पक्ष छोड़कर, अपने माने हुए अभिप्राय को छोड़कर, वस्तु के स्वरूप की मर्यादा क्या है, उसका अर्थ, अभिप्राय बनाना—यह कोई अलौकिक बात है। इस अभिप्राय में भगवान आत्मा आत्मा है। आहाहा! उसके बिना अभिप्राय का विषय द्रव्य होता नहीं। आहाहा!

तो यहाँ कहते हैं कि **उत्पन्न होता हुआ जीव ही...** एकान्त कहा। इन परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है। इन परिणाम से उत्पन्न होता हुआ, ये परिणाम जीव ही है। परिणाम जीव ही है। आहाहा! पाठ में है न? **जीव एव...** संस्कृत में है। संस्कृत में पहली लाईन। **जीव एव...** संस्कृत में है। पहली लाईन में है। आहाहा! जीव ही है। अरे प्रभु! परिणाम जीव ही है? जीव तो द्रव्य है और यह परिणाम तो एक समय की पर्याय है। यहाँ तो द्रव्य जिस समय परिणमता है, ऐसा लेकर द्रव्य अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ, (ऐसा कहा)। पर के परिणाम से नहीं, पर का परिणाम उत्पन्न करता नहीं। आत्मा के अतिरिक्त शरीर, वाणी, मन की जो अवस्था होती है, यह आत्मा से बिल्कुल नहीं। आहाहा! अपने परिणाम के अतिरिक्त दूसरे का परिणाम—पर्याय आत्मा तीन काल में कभी कर सकता नहीं। यह पैर चलते हैं। पैर चलते हैं, इस क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं। यह तो परसों विशेष कहा था न? ये पैर चलते हैं, यह जमीन को छूते नहीं। ये पैर जमीन को छूते नहीं और पैर चलते हैं। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी छूता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म पड़े, परन्तु प्रभु! मार्ग यह है। यह उसको करना पड़ेगा। आहाहा! बात यह है।

ओहोहो! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ अनुसारी... दिगम्बर सन्त केवली के मार्गानुसारी। केवलज्ञानी के मार्गानुसारी चलनेवाले और केवलज्ञान को अल्पकाल में

प्राप्त करनेवाले... हिन्दी में 'लेनारा' का कहते हैं ? समझ में आया ? आहाहा ! कहा न पहले ? कि जब अपने द्रव्य के आश्रय से मति-श्रुतज्ञान हुआ, तो वह मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। षट्खण्डागम में है। आओ... आओ... अल्प काल में केवलज्ञान आओ। अब तुम्हारा केवलाान दूर नहीं रहेगा। आहाहा ! एक व्यक्ति जाता हो तो (कहे), भैया ! यहाँ आओ... यहाँ आओ... .... यह रास्ता है सिद्धपुर जाने का... सिद्धपुर जाने का। आहाहा ! यह वाड रास्ते जाना है कि खुल्ला मार्ग से जाना है ? गाडा रास्ता तो दोनों है। भाई ! यहाँ आओ। इसी प्रकार यहाँ केवलज्ञान को कहते हैं कि आओ प्रभु ! अभी निकट में आओ। अब तुम दूर नहीं रह सकते। आहाहा ! दूज उगी है तो पूनम होगी ही होगी। दूज... दूज। आज तो चौदश है। दूज उगी, पूनम होगी ही होगी। इसी प्रकार क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाला समकिती अल्प काल में केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। आहाहा ! कठिन पड़े जगत को, परन्तु भाई ! अन्तर की चीज़ है, प्राप्त की प्राप्ति है। है, उसमें से लेना है। नहीं है, उसमें से लेना नहीं है। अन्दर प्राप्त पड़ा है। आहाहा !

यह जीव ही है। यह जीव का परिणाम जीव ही है। आहाहा ! ३२०वीं गाथा में कहेंगे। पण्डितजी ! मोक्ष और मोक्ष का मार्ग जीव करता नहीं। आहाहा ! यह तो परिणाम करता है। ३२० गाथा। यह गाथा है न ३२०वीं। उदय, निर्जरा और बन्ध, मोक्ष को आत्मा जानता है, मोक्ष को आत्मा करता नहीं। गाथा ३२०। ३२०। उदय और निर्जरा... निर्जरा को जानता है, उदय को भी जानता है, निर्जरा को भी जानता है, बन्ध को भी जानता है और मोक्ष को भी जानता है। आहाहा ! समझ में आया ? करता है, ऐसा वहाँ नहीं लिया। वहाँ तो, एकदम अन्दर द्रव्य की दृष्टि निर्मल परिणति हुई तो पर्याय का भी जिसको आश्रय नहीं। पर्याय को उसका अवलम्बन नहीं और पर्याय का आश्रय द्रव्य को भी नहीं। आहाहा !

अलिंगग्रहण में तो ऐसा लिया है। अलिंगग्रहण है न ? २० बोल। १७२ गाथा प्रवचनसार। अलिंगग्रहण। २०वें बोल में तो ऐसा लिया है कि यह आत्मा... अपने प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो आत्मा... यह है... यह है... यह है... यही है (ऐसा) प्रत्यभिज्ञान का कारण आत्मा अपने द्रव्य को स्पर्शता नहीं... अपने द्रव्य को स्पर्शता

नहीं, ऐसी शुद्ध वेदनपर्याय है। वेदन में आया, वह मैं हूँ। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि द्रव्य है, वह मैं हूँ। यह किस अपेक्षा से लेना है? यह तो... मार्ग वीतराग का स्याद्वाद मार्ग है। परन्तु स्याद्वाद का अर्थ ऐसा नहीं कि निश्चय से भी होता है और व्यवहार से भी होता है। उपादान से भी होता और निमित्त से भी होता है—यह स्याद्वाद नहीं है। यह तो फुदड़ीवाद है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं... वहाँ ३२० गाथा में (पर्याय में) जीव की (नास्ति कहते) हैं। जीव जो है, वह मोक्ष का मार्ग करता नहीं, मोक्ष को भी करता नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि... अभी ये गाथा ३२० चलेगी।

जीव **अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है...** आहाहा! अभेद लिया। जिसमें से परिणाम आया, यह परिणाम उसका है, जीव का ही है। **अजीव नहीं।** यह अनेकान्त... यह अनेकान्त... जीव भी है और अजीव भी है—यह अनेकान्त नहीं, यह तो मिथ्या एकान्त—फुदड़ीवाद है। अपना परिणाम अपने से उत्पन्न होता है, यह जीव ही है, अजीव नहीं। आहाहा! यह कर्म से उत्पन्न नहीं हुआ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान उत्पन्न हुआ, यह कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न नहीं हुआ। आहाहा! समझ में आया? अजीव से नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जिस समय में जो (होनेवाला है), वह होगा, यह बात... हम क्या करें? भगवान ने देखा ऐसा होगा, ऐसा दो वर्ष सुना। ... क्या कहते हैं? भगवान ने देखा ऐसा होगा (ऐसा कहते हो, तो) सर्वज्ञ परमात्मा जगत में हैं, उस सत्ता का स्वीकार है अन्दर? सत्ता का स्वीकार है तो दृष्टि ज्ञान में झुक जाती है। सर्वज्ञ(स्वभाव) में दृष्टि झुक जायेगी। भगवान ने उसके भव देखे ही नहीं।

(संवत्) १९७२ की बात है। यह कहते थे, भगवान ने (भव) देखा तो होगा। यहाँ कहा कि ज्ञानस्वरूप में जो दृष्टि झुक गयी, आहाहा! तो भगवान ने उसके भव देखे ही नहीं। एक-दो भव हो, वह भव नहीं, वे तो ज्ञान का ज्ञेय है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है। साधारण बात में ले ले या मान ले, जिन्दगी चली जायेगी, बापू! ऐसा वीतरागमार्ग है, इसका सत्य निर्णय (नहीं करे) और सत्य के पंथ नहीं जाये, यह सब दुःख के पंथ हैं। आहाहा! शास्त्र में 'चपलाई' कहा है। पुण्य और पाप के अनेक प्रकार विकार, यह चपलाई है। चपलाई... चपलाई समझते हैं?

लोग 'चपल' नहीं कहते? 'चपलाई' ऐसा पाठ है। आहाहा! और चपलाई, वह दुःख है। शुभ और अशुभभाव दोनों जीव के परिणाम ही नहीं, वे तो अजीव के—जड़ के परिणाम हैं। आहाहा! ऐसी बात है। यहाँ तो अभी (शुद्ध) परिणाम अपना है, वहाँ तक लेना है। परिणाम अपने हैं, अजीव नहीं। एक बोल हुआ।

इसी प्रकार अजीव भी... यह शरीर, वाणी और कर्म... कोई कहे कि आत्मा राग-द्वेष करता है तो वहाँ कर्म बँधते हैं। यहाँ इनकार करते हैं। यह कर्मवर्गणा जो है, उसमें कर्मपर्याय होने का समय है, तब ही कर्मरूप से परिणमन करती है। यह अजीव भी अपने क्रमबद्धपरिणाम से परिणमन करता है। आहाहा! यह होठ चलते हैं, जीभ चलती है, यह उसमें (-परमाणु में) क्रमबद्ध में जो परिणाम है, उस परिणाम से उत्पन्न होता है, आत्मा से नहीं और आगे-पीछे भी नहीं। आहाहा! उस समय की भाषावर्गणा की पर्याय उत्पन्न होने की योग्यता से क्रमबद्ध में होती है। वचनवर्गणा में से वचन की पर्याय होती है, वह क्रमबद्ध में पर्याय आनेवाली है, उससे होती है। आत्मा तो कर सकता नहीं, परन्तु दूसरा परमाणु भी भाषा की पर्याय कर सकता नहीं। आहाहा! भाषा की पर्याय जिस परमाणु में हुई, उसी परमाणु में ये पर्याय क्रमबद्ध होती है। आहाहा!

यह कहा, **इसी प्रकार अजीव भी...** 'भी' क्यों कहा? कि पहले लिया था न? जीव का बोल लिया था। इसी प्रकार अजीव भी... **क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...** आहाहा! यह लकड़ी ऐसे ऊँची होती है ऐसे, तो कहते हैं कि अँगुली से नहीं। उसके क्रमबद्ध में परिणाम आनेवाला था तो नीचे से ऊँची हुई। उस पर्याय का कर्ता आत्मा तो नहीं, परन्तु वास्तव में पर्याय का कर्ता उसका द्रव्य भी नहीं। पर्याय का कर्ता पर्याय है। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म बात। अभी तो बाहर में सम्प्रदाय में व्रत ले लो, प्रतिमा ले लो। समकित क्या चीज़ है (उसकी खबर नहीं)। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा समकित है, जाओ। नौ तत्त्व की श्रद्धा... आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अफीम पीता है और फिर कहते हैं कि मुझे कस्तूरी की डकार आयेगी। अफीम पीता है और कस्तूरी की डकार आयेगी। इसी प्रकार प्रतिमा-फ्रतिमा

का राग तो विकल्प है। अभी तो सम्यग्दर्शन इत्यादि प्रतिमा कैसी? प्रतिमावाला दो-दो प्रतिमा, चार प्रतिमा ले। धूल में भी प्रतिमा नहीं। और पंच महाव्रत हो गया, अट्ठाईस मूलगुण हो गया। अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत तो राग है, आस्रव है, बन्ध का कारण है, संसार है। कहाँ से धर्म आ गया उसको? आहाहा! यह पंच महाव्रत का राग बन्ध का कारण है, दुःख का कारण है।

कहा था न कल? नहीं? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' अनन्त बार दिगम्बर मुनि हुआ, पंच महाव्रत धारे, निरतिचार २८ मूलगुण पालनेवाला (हुआ)। उसके लिये चौका करे तो (आहार) भी न ले। उसके लिए चौका करे (और आहार ले) तो व्यवहार भी झूठा है। आहाहा! निश्चय तो है ही नहीं, सम्यग्दर्शन तो है ही नहीं। समझ में आया? उद्देशिक आहार का त्याग तो ग्यारहवीं प्रतिमावाले को भी है। ग्यारहवीं प्रतिमा है, उसको भी उद्देशिक का त्याग है। मुनि के लिए बनाता है और लेता है, तो लेनेवाला भी मिथ्यादृष्टि, देनेवाला भी मिथ्यादृष्टि। देनेवाला साधु मानकर देता है और साधु मानकर लेता है। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है... यह अजीव का परिणाम अजीव से उत्पन्न होता है। **जीव नहीं।** देखो! 'जीव नहीं' अर्थात् जीव से उत्पन्न होता नहीं। यह हिलते-चलते हैं तो जीव की प्रेरणा से हिलते-चलते हैं—ऐसा बिल्कुल झूठ है। आहाहा! हिलते-चलते हैं तो उसकी जड़ की पर्याय से है, ये जीव से बिल्कुल नहीं। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)